मीडिया किसके हाथों में

धीरे-धीरे ही सही पर मीडिया के मामले में अब तीन बातें स्वीकार की जाने लगी हैं। मीडिया में काम करने वाले लोगों के वेतन, सुविधायें तथा सुरक्षा के संबंध में वेतन आयोग का गठन और उसकी सिफारिशों को लागू कराना लगभग सभी चाहते हैं। इसीलिए मजीठिया आयोग की सिफारिशों का उतना विरोध नहीं हुआ है जितना पूर्व में भाचावत या उससे पहले के आयोगों का हुआ था। इसी के साथ अब यह बात भी गंभीरता से कही जाती है कि अन्य उत्पादों की तरह यदि मीडिया की कीमतों का निर्धारण नहीं होता है और समाचारपत्र उत्पादन लागत से कम में बेचा जाता है या इलेक्ट्रॉनिक चैनलों के लिए उसके उपयोगकर्ता कोई शुल्क नहीं चुकाते हैं तो उनकी आर्थिकी के संबंध में कुछ अलग ढंग से सोचने की जरूरत है जिसमें कर्मचारियों का वेतन आदि का मामला भी है। यदि उसकी आर्थिकी का पोषण नहीं किया जाता है तो उस पर इस तरह के भुगतान की शर्तें लगाना एक तरह से उस व्यवसाय को क्षति पहुँचाना ही है। इस संबंध में कोई बहुत ही व्यावहारिक नीति तथा उपाय की जरूरत है जो कर्मचारियों के हितों की तरह व्यवसाय के हितों के संबंध में भी विचार करे। तीसरी बात यह है कि मीडिया एक तरह से लोक सेवा है और वह लोगों को अपने समय के विचारों, जरूरतों तथा घटना-प्रसंगों से परिचित कराते हुए समाज रचना में अपना योगदान देता है। हालांकि जिस समय हम यह बात कर रहे हैं उस समय सेवाओं के क्षेत्र का चरित्र बदल गया है। अब शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में व्यापार-व्यवसाय की प्रवृत्ति काम कर रही है। उस तरह का व्यवसाय मीडिया कर सकता है या कर पायेगा या उसमें इस तरह की संभावना है या उन क्षेत्रों की तरह विवशतायें हैं, यह कह पाना कठिन है। पर बहुतेरे लोग मीडिया को व्यवसाय या उद्योग की श्रेणी में रखने के पक्षधर नहीं है। यह तीनों ही दृष्टिकोण उसके अंतर्विरोध को स्पष्ट करते हैं। इन अंतर्विरोधों को समझे बिना मीडिया के संबंध में कोई भी एकतरफा निर्णय मीडिया की आजाद और स्वविवेकी सूचना-भूमिका को हानि ही पहुंचायेगा। वह सम्पादकीय वर्चस्व के बजाय व्यवसाय के वर्चस्व के हाथों में होगा और वही उसकी नीतियां तय करेंगे। इससे मीडिया, बाजार और दबंगई की तरफ ही मुड़ेगा और लोगों को सूचना तथा विचारों की वास्तविकता पारदर्शी ढंग से नहीं मिल सकेगी।

सूचना और विशेषकर व्याख्यायित-विश्लेषित सूचना, समय की जरूरत है। बाजार, तकनीक और व्यवस्था तंत्र के हितों ने उसे बहुत ही अपारदर्शी और उलझी बना दी है। अब उसे सहज और

सरल ढंग से समझा नहीं जा सकता है क्योंकि सभी एक ही जानकारी को ज्यादातर अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इन तीनों यानी बाजार, तकनीक और व्यवस्था-राजनीति के अपने-अपने हित हैं। अपने हितों के साथ ही वे लोगों यानी समाज के लिए अपने को प्रस्तुत करते हैं, यह कहते हुए कि वे समाज और लोगों के विकास में सहयोगी है। पर यह पूरा सच नहीं है। यह पूरा सच लोगों के सामने लाने की कोई उत्तरदायी या जबावदेह इकाई भी नहीं है। मीडिया की उपस्थिति इसी मायने में जरूरी और महत्वपूर्ण है।

बाजार के पिछले चार दशक देख लें। उसने लोगों को उनके हित और जरूरत को पूरा करने के साथ-साथ उनके लिए गैर जरूरी और भोगवादी सामग्री के लिए प्रोत्साहित किया है। उसने लोगों में स्पर्धा और नफरत और अहमन्यता जैसे भावों को फैलाया है। पूंजी के असमान वितरण और कुछ हाथों में उसके एकत्रित होने की स्पर्धा भी इसी समय की है। बाजार की तरह तकनीक ने दो वर्ग पैदा किये हैं और उनमें जो तकनीक का उपयोग करने वाला है, उसे उसने बेहतर विकास के अवसर दिये हैं और जो उसका उपयोग नहीं कर पाता है वह अज्ञान के अंधेरे में भटकने के लिए विवश है। तकनीक कहने को तो सभी के लिए है पर वह सभी के लिए उपलब्ध नहीं है। उसने बाजार को ही मजबूत किया है और उसके बाद वह तंत्र तथा तंत्र पर काबिज होने की मंशा रखने वालों के लिए उपलब्ध रही है। लगभग यही हाल व्यवस्था तंत्र का है जिसमें राजनीतिक प्रतिनिधित्व भी शामिल है। यह तीनों ही आपस में एक तरह का गठजोड़ करके अपने हितों का संवर्धन और विस्तार करते हैं। सच तो यह है कि इनकी उपस्थिति और उपादेयता लोगों यानी समाज के लिए रही है और यह उन्हीं के नाम पर विकसित किये गये हैं। पर सोचें कि इनका सच क्या यही है। मीडिया की उपस्थिति और उसका सहज-सरल होना इन्हीं अर्थों में महत्वपूर्ण है। वह समाज के लोगों को अपने समय की समझ देता है और उन्हें अपनी तरह का समाज बनाने का सामर्थ्य देता है जिससे वे सार्थक हस्तक्षेप कर सकें। कमजोर और व्यवसायोन्मुख मीडिया ऐसा नहीं कर सकेगा। इसे उन सभी को सोचना चाहिये जो समाज की मूल्यनिष्ठ रचना में मीडिया की किसी भूमिका अनुभव करते हैं।

****